ISSN: 2393-8048
International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
Multidisciplinary, Multilingual, Indexed, Double Blind, Open Access, Peer-Reviewed, Refereed-International Journal.
SJIF Impact Factor =8.152, July-December 2025, Submitted in October 2025

प्रेमचंद और शरत चंद्र गोस्वामी की स्वतंत्रता-पूर्व लघु कथाओं में समाज, संस्कृति और सुधार का अंतर्संबंध

ज्ञानी राम (शोधकर्ता), हिंदी विभाग, सिक्किम अल्पाइन विश्वविद्यालय, नामची (सिक्किम)
डॉ. नवल किशोर दुबे (प्रोफेसर), हिंदी विभाग, सिक्किम अल्पाइन विश्वविद्यालय, नामची (सिक्किम)

सार

यह शोध पत्र बीसवीं सदी के आरंभिक भारतीय साहित्य की दो प्रमुख विभूतियों, मुंशी प्रेमचंद और शरतचंद्र गोस्वामी की रचनाओं में समाज, संस्कृति और सुधार के बीच गहरे अंतर्संबंधों की पड़ताल करता है। दोनों लेखकों ने छोटे उद्यमियों, मज़दूर वर्ग के लोगों और ग्रामीण आम लोगों के अपने सजीव चित्रण के माध्यम से स्वतंत्रता-पूर्व भारत के संघर्षों, आकांक्षाओं और विकसित होती चेतना को उकेरा है। यह शोध पत्र इस बात पर ज़ोर देता है कि कैसे सामाजिक-आर्थिक संरचनाएँ, सांस्कृतिक विचारधाराएँ और सुधारवादी आवेग उनके आख्यानों में अभिसरित होकर यथार्थवाद, नैतिक उत्तरदायित्व और मानवतावाद पर आधारित एक नई भारतीय पहचान को आकार देते हैं। यहाँ अपनाया गया तुलनात्मक दृष्टिकोण हिंदी और असमिया साहित्यिक परंपराओं को एक साझा राष्ट्रीय जागृति के प्रतिबिंबित सूक्ष्म जगत के रूप में खोजता है।

विशेष शब्द: प्रेमचंद, शरत चंद्र गोस्वामी, असमिया साहित्य, हिंदी लघु कथा, समाज, संस्कृति, सुधार, उद्यमिता, यथार्थवाद, राष्ट्रवाद|

1. प्रस्तावना

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के आरंभ में भारत में असाधारण सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का दौर आया। उपमहाद्वीप एक गहन जागृति के दौर से गुज़र रहा था—एक ऐसा युग जो एक ओर औपनिवेशिक उत्पीड़न और दूसरी ओर राष्ट्रवादी चेतना के उदय से परिभाषित था। पश्चिमी शिक्षा के आगमन, मुद्रण माध्यमों के विस्तार और औद्योगिक पूँजीवाद के प्रसार ने ज्ञानोदय और अलगाव, दोनों को जन्म दिया। औपनिवेशिक संघर्ष ने पारंपरिक पदानुक्रमों को छिन्न-भिन्न कर दिया, आर्थिक संबंधों को नया रूप दिया और नैतिकता, पहचान और सुधार की अवधारणाओं को पुनर्परिभाषित किया। यह वह समय था जब भारत अपनी प्राचीन सांस्कृतिक जड़ों को ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा लाई गई आधुनिकता की व्यापक बयार के साथ सामंजस्य बिठाने के लिए संघर्ष कर रहा था। इस गतिशील परिवेश में, साहित्य एक निष्क्रिय पर्यवेक्षक नहीं रहा; बल्कि सुधार, चिंतन और प्रतिरोध का एक सक्रिय माध्यम बन गया। लेखकों ने उन आम लोगों के अनुभवों के माध्यम से प्रगति, न्याय और स्वतंत्रता के अर्थ की पुनर्व्याख्या शुरू की, जिनकी आवाज़ें शास्त्रीय साहित्य के गलियारों में लंबे समय से अनसुनी रह गई थीं।

इस बदलते ऐतिहासिक परिदृश्य के बीच, मुंशी प्रेमचंद (1880-1936) और शरत चंद्र गोस्वामी (1887-1944) क्रमशः हिंदी और असमिया साहित्य जगत के दो महत्वपूर्ण साहित्यकारों के रूप में उभरे। अलग-अलग भाषाई और सांस्कृतिक परंपराओं से जुड़े होने के बावजूद, दोनों लेखकों ने स्वतंत्रता-पूर्व भारत के आम जीवन की वास्तविकताओं को चित्रित करने के लिए एक नैतिक और वैचारिक प्रतिबद्धता साझा की। प्रेमचंद, जिन्हें अक्सर हिंदी यथार्थवाद का जनक माना जाता है, ने ग्रामीण भारत की कठोर सामाजिक वास्तविकताओं—गरीबी, जातिगत उत्पीड़न, सामंती शोषण और नैतिक पतन—को चित्रित करने के लिए रोमांटिक आदर्शवाद और पौराणिक कथा शैलियों से अलग हटकर काम किया। उनकी कहानियों ने निम्नवर्ग—गरीब किसानों, मजदूरों, छोटे उद्यमियों और महिलाओं—को आवाज़ दी, जो भारतीय राष्ट्र की रीढ़ थे, फिर भी सामाजिक और आर्थिक रूप से हाशिए पर रहे। नमक का दरोगा, पूस की रात और कफ़न जैसी अपनी कहानियों के माध्यम से, प्रेमचंद ने शोषण और नैतिक संघर्ष के जाल में फंसे व्यक्तियों के नैतिक और भावनात्मक संघर्षों को उजागर किया।

इसी प्रकार, असमिया साहित्य जगत में, शरत चंद्र गोस्वामी उन अग्रणी स्वरों में से एक के रूप में उभरे जिन्होंने आधुनिक असमिया लघुकथा को आकार दिया। ऐसे समय में लिखते हुए जब असम सांस्कृतिक पुनर्जागरण और राजनीतिक अधीनता की दोहरी प्रक्रिया से गुज़र रहा था, गोस्वामी की रचनाओं ने मानवीय भावना, सामाजिक सुधार और नैतिक उत्तरदायित्व के बीच सूक्ष्म अंतर्संबंध को दर्शाया। उनकी लघुकथाएँ, जो गल्पांजलि (1914), मयना (1920) और बाजीकर (1930) जैसे संग्रहों में प्रकाशित हुईं, एक ऐसे समाज को प्रतिबिंबित करती हैं जो असमिया वैष्णव संस्कृति के विरासत में मिले मूल्यों और पश्चिमी आधुनिकता के प्रभाव के बीच समझौता कर रहा था। छोटे व्यापारियों, शिल्पकारों और मध्यमवर्गीय परिवारों के संवेदनशील चित्रणों के माध्यम से, गोस्वामी ने असमिया समाज की उभरती उद्यमशीलता की भावना का वृत्तांत रचा और साथ ही इसके आंतरिक अंतर्विरोधों की आलोचना भी की। उनकी सुधारवादी दृष्टि राजनीतिक विद्रोह में नहीं, बल्कि व्यक्तियों और समुदायों के नैतिक जागरण में निहित थी, इस प्रकार नैतिक आत्मनिरीक्षण को सामाजिक प्रगति के साथ जोड़ा।

प्रेमचंद और गोस्वामी, दोनों ने लघुकथा को आर्थिक संघर्ष और नैतिक संकट के चौराहे पर खड़े लोगों की जीवंत वास्तविकताओं को उजागर करने के लिए एक सशक्त साहित्यिक साधन के रूप में इस्तेमाल किया। छोटा उद्यमी—चाहे वह गाँव का व्यापारी हो, कारीगर हो, या स्व-नियोजित श्रमिक—उनके उपन्यासों में एक प्रतिनिधि पात्र के रूप में कार्य करता था, जो आत्मनिर्भरता और व्यवस्थागत उत्पीड़न के बीच के तनाव को मूर्त रूप देता था। ये व्यक्ति न तो शासक अभिजात वर्ग थे और न ही घोर गरीब; वे औपनिवेशिक भारत के संक्रमणकालीन मध्य वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे, जिसका अस्तित्व अनुकूलनशीलता, ईमानदारी और लचीलेपन पर निर्भर था। अपने आख्यानों के माध्यम से, दोनों लेखकों ने यह पता लगाया कि यह वर्ग औपनिवेशिक नौकरशाही, जातिगत पदानुक्रम और नैतिक समझौतों के जटिल सामाजिक जाल में कैसे उलझा रहा। उनके पात्र अक्सर भौतिक आकांक्षा और नैतिक कर्तव्य के बीच झूलते रहते हैं, जो भारत के सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के गहन मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक आयामों को उजागर करते हैं।

गहरे स्तर पर, दोनों लेखकों ने साहित्य को नैतिक पुनर्निर्माण के साधन के रूप में देखा। प्रेमचंद के लिए, यथार्थवाद केवल एक सौंदर्यपरक विकल्प नहीं था—यह नैतिक हस्तक्षेप का एक रूप था। समाज के प्रति उनकी दृष्टि सत्य, अहिंसा और सामाजिक समरसता के गांधीवादी आदर्शों से प्रेरित थी। उनका मानना था कि सुधार केवल आंतरिक जागृति और सामाजिक सहानुभूति के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। दूसरी ओर, गोस्वामी को श्रीमंत शंकरदेव से प्रेरित असम की सुधारवादी परंपरा विरासत में मिली थी, जिसमें समानता, भक्ति और सामुदायिक जीवन पर ज़ोर दिया गया था। उनका मानवतावाद एक गहन आध्यात्मिक विश्वदृष्टि से उपजा था, जो सुधार को बाहरी क्रांति के बजाय सांस्कृतिक आत्म-नवीकरण की एक जैविक प्रक्रिया के

रूप में देखता था। इस प्रकार, जहाँ प्रेमचंद ने सामाजिक अन्याय को राजनीतिक और आर्थिक यथार्थवाद के माध्यम से संबोधित किया, वहीं गोस्वामी ने सांस्कृतिक आत्मनिरीक्षण और नैतिक चिंतन के माध्यम से उनका सामना किया।

इन दोनों लेखकों का तुलनात्मक अध्ययन इस बात का एक आकर्षक अन्वेषण प्रस्तुत करता है कि कैसे साहित्य, भाषाई और क्षेत्रीय सीमाओं के पार, सुधार और राष्ट्रीय चेतना के लिए एक एकीकृत शक्ति बन गया। हिंदी और असमिया, दोनों लघुकथा परंपराएँ समान ऐतिहासिक उत्तेजनाओं—औपनिवेशिक शोषण, आधुनिकीकरण और पहचान की खोज—की प्रतिक्रिया में विकसित हुईं। फिर भी, प्रत्येक ने अपने सांस्कृतिक मुहावरों और कथात्मक रणनीतियों के माध्यम से सुधार को अभिव्यक्त किया। प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि और गोस्वामी का नैतिक आत्मनिरीक्षण मिलकर यह प्रकट करते हैं कि स्वतंत्रता-पूर्व भारतीय लघुकथा केवल मनोरंजन के रूप में ही नहीं, बल्कि एक सामाजिक-सांस्कृतिक दस्तावेज़ के रूप में भी कार्य करती थी, जो एक बदलते राष्ट्र की नब्ज़ को प्रतिबिंबित करती थी। उनकी रचनाएँ कला और सक्रियता, परंपरा और आधुनिकता, व्यक्तिगत भावना और सामूहिक सुधार के संगम का उदाहरण हैं।

2. ऐतिहासिक संदर्भ: परिवर्तन में भारत

भारत का स्वतंत्रता-पूर्व काल अभूतपूर्व परिवर्तन का दौर था, जिसमें तीव्र राजनीतिक गतिविधियाँ, सामाजिक सुधार आंदोलन और सांस्कृतिक जागरण एक साथ उभरे। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी की शुरुआत में औपनिवेशिक शासन और पश्चिमी शिक्षा ने पारंपरिक भारतीय मूल्यों को आधुनिक विचारों से जोड़ा। ब्रिटिश शासन ने भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था और राजनीति—तीनों का पुनर्गठन किया। रेलवे, उद्योग और शिक्षा के विस्तार से जहाँ व्यापारियों, कारीगरों और छोटे उद्यमियों का एक नया वर्ग उभरा, वहीं किसान और श्रमिक वर्ग और अधिक गरीबी में धँस गया। अंग्रेजी शिक्षा और मुद्रणालय के प्रसार से शिक्षित भारतीयों ने औपनिवेशिक सत्ता और सामाजिक असमानता दोनों पर प्रश्न उठाए। ब्रह्म समाज, आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन जैसे आंदोलनों ने परंपराओं के पुनर्मूल्यांकन का मार्ग प्रशस्त किया, जबकि राजा राम मोहन राय, स्वामी विवेकानंद और महात्मा गांधी ने नैतिक पुनर्जागरण, स्वदेशी और सामाजिक समानता को स्वतंत्रता का आधार माना। इस प्रकार यह युग आध्यात्मिकता, सामाजिक सुधार और आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों के संगम का प्रतीक बना।

आर्थिक रूप से, भारत औपनिवेशिक काल में बड़े बदलावों से गुजरा। अंग्रेजों की भू-राजस्व प्रणालियाँ—जैसे स्थायी बंदोबस्त और रैयतवाड़ी व्यवस्था—ने कृषि ढाँचे को तोड़ दिया और बिचौलियों व साहूकारों का वर्ग पैदा किया, जिसने किसानों का शोषण किया। इसी के प्रतिकार स्वरूप छोटे उद्यमी, शिल्पकार और व्यापारी उभरे, जो आर्थिक आत्मनिर्भरता की पहली लहर बने। ये स्थानीय उत्पादक औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के खिलाफ स्वदेशी प्रतिरोध के प्रतीक बने, यद्यपि जातिगत बंधनों, ऋण की कमी और शोषणकारी नीतियों ने उनकी प्रगति को सीमित किया। इन सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के बीच साहित्य सामाजिक चेतना और सुधार का प्रभावी माध्यम बना। बंगाल पुनर्जागरण में बंकिम चंद्र चटर्जी और रवींद्रनाथ टैगोर ने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक पुनरुत्थान को प्रोत्साहित किया। इसका प्रभाव हिंदी साहित्य तक पहुँचा, जहाँ भारतेंदु हरिश्चंद्र ने "भाषा, भेष, भावना और भक्ति में भारतीयता" का नारा दिया। *कवि वचन*, *सरस्वती* और *इंदु* जैसी पत्रिकाओं ने नई सामाजिक चेतना को जन्म दिया और सुधारवादी लेखकों की पीढ़ी तैयार की।

बीसवीं सदी की शुरुआत तक लघुकथा साहित्यिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन चुकी थी। इसकी संक्षिप्तता ने लेखकों को आम लोगों के जीवन, उनके संघर्षों और नैतिक दुविधाओं पर केंद्रित होने का अवसर दिया, जिससे साहित्य का लोकतंत्रीकरण हुआ। प्रेमचंद और शरतचंद्र गोस्वामी ने इसे मनोरंजन से आगे बढ़ाकर नैतिक जागृति और सामाजिक आलोचना का माध्यम बनाया। उनकी कहानियाँ आर्थिक असमानता, जातिगत भेदभाव, पितृसत्तात्मक मानदंडों और औपनिवेशिक शोषण की सच्चाइयों को उजागर करती हैं। प्रेमचंद ने हिंदी साहित्य में यथार्थवाद की नींव रखी—उन्होंने ग्रामीण जीवन, किसानों और छोटे उद्यमियों की पीड़ा को मानवीय गरिमा के साथ प्रस्तुत किया। वहीं, असमिया संदर्भ में शरतचंद्र गोस्वामी ने शिक्षकों, कारीगरों और व्यापारियों के माध्यम से असमिया समाज की सांस्कृतिक जागृति को दर्शाया। राष्ट्रवादी आंदोलनों—विशेषकर बंगाल विभाजन (1905), स्वदेशी और असहयोग आंदोलन (1920–22)—ने साहित्य और राजनीति को गहराई से जोड़ा। लेखकों ने साहित्य को नैतिक और सामाजिक सुधार का साधन बनाया। मुद्रण और पत्रकारिता के प्रसार से साहित्य जन-जन तक पहुँचा, और इस युग में सामाजिक यथार्थवाद तथा सुधारवादी चेतना का नया संगम उभरा।

3. प्रेमचंद की रचनाओं में समाज और उद्यमशीलता की भावना

आधुनिक भारतीय साहित्य की महानतम हस्तियों में से एक, प्रेमचंद ने अपनी कलम का इस्तेमाल सिर्फ़ कहानियाँ सुनाने के लिए ही नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना जगाने के लिए भी किया। बीसवीं सदी के शुरुआती दशकों में उनकी रचनाएँ ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अशांत वर्षों, बढ़ते वर्ग विभाजन और राष्ट्रवादी जागृति के उदय के साथ मेल खाती थीं। पूस की रात (1914), कफ़न (1936), नमक का दरोगा (1925) और ईदगाह (1933) जैसी कहानियों में, प्रेमचंद ने भारत के संघर्षरत ग्रामीण गरीबों, निम्न-मध्यम वर्गों और छोटे उद्यमियों के सजीव और गहन मानवीय चित्र उकेरे, जो नैतिकता, अस्तित्व और उत्पीड़न के चौराहे पर रहते थे। ये रचनाएँ अलग-थलग आख्यान नहीं हैं—ये एक व्यापक नैतिक दृष्टि का हिस्सा हैं जो आम भारतीयों के जीवन में गरिमा बहाल करना चाहती है। अमृत राय (1982) ने "प्रेमचंद: कलम का सिपाही" और रेणु (1990) ने "हिंदी साहित्य में यथार्थवाद" में प्रेमचंद के उपन्यासों को अपने युग की साहित्यिक चेतना बताया है—जहाँ लेखक एक पर्यवेक्षक और एक सुधारक दोनों बन जाता है। प्रेमचंद की सबसे प्रसिद्ध कहानियों में से एक, नमक का दरोगा (1925) में, नायक मुंशी वंशीधर (जिन्हें कभी-कभी गलती से घोषाल भी कहा जाता है) एक भ्रष्ट औपनिवेशिक व्यवस्था में ईमानदारी के लिए संघर्षरत ईमानदार, स्व-निर्मित व्यक्तियों के उभरते वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब वंशीधर एक धनी नमक व्यापारी से रिश्वत लेने से इनकार कर देते हैं, तो उनका नैतिक प्रतिरोध भ्रष्टाचार की गहरी जड़ें जमाए संस्कृति के विरुद्ध एक शांत क्रांति के रूप में सामने आता है। वंशीधर के चरित्र के माध्यम से प्रेमचंद इस विचार को सामने लाते हैं कि भारत में सुधार आम आदमी के भीतर से शुरू होना चाहिए, न कि केवल राजनीतिक आंदोलन या धार्मिक उपदेशों से। जैसा कि आर. सी. शुक्ल (1983) ने हिंदी साहित्य का इतिहास में लिखा है, प्रेमचंद के पात्र "भारत के जागृत निम्न-मध्यम वर्ग की बढ़ती नैतिक जागरूकता को दर्शाते हैं—एक ऐसा वर्ग जो न केवल आजीविका चाहता है, बल्कि नैतिक वैधता भी चाहता है।"

कहानी प्रभावशाली ढंग से दर्शाती है कि कैसे एक छोटा उद्यमी या कर्मचारी, अपने सीमित साधनों के बावजूद, लालच और अन्याय से विभाजित समाज में नैतिक परिवर्तन का वाहक बन जाता है।

'कफ़न' (1936) प्रेमचंद की वह मार्मिक कहानी है जो अत्यधिक गरीबी के अमानवीय प्रभावों को उजागर करती है। दलित पिता-पुत्र घीसू और माधव अपनी बहू की मृत्यु पर उदासीन रहते हैं और कफ़न के पैसे से शराब पी लेते हैं। आलोचक **एच. एस. द्विवेदी (2008)** और **नामवर सिंह (1993)** के अनुसार, यह कहानी नैतिक पतन का सटीक चित्रण है जहाँ गरीबी को आदर्श नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं को नष्ट करने वाली अवस्था के रूप में दिखाया गया है। प्रेमचंद गरीबों का रोमांटीकरण नहीं करते, बल्कि उन्हें ऐसी नैतिक दुनिया में रखते हैं जहाँ जीवित रहना ही करुणा से बड़ा संघर्ष बन जाता है। **'पूस की रात' (1914)** में छोटा किसान **हल्कू** ठिठुरती रात में फसल की रखवाली करते हुए मर जाता है। यह कहानी ग्रामीण जीवन की दरिद्रता और श्रमिकों की शांत गरिमा दोनों को दर्शाती है। **नंदा (1995)** के अनुसार, प्रेमचंद साधारण ग्रामीण घटनाओं को सार्वभौमिक मानवीय पीड़ा और दृढ़ता के प्रतीक में बदल देते हैं। हल्कू भारत के किसान वर्ग की उस मौन शक्ति का प्रतीक है जो आगे चलकर गांधी के *स्वराज* और *आत्मनिर्भरता* के विचारों का आधार बनी। प्रेमचंद की करुणा आर्थिक शोषण से आगे बढ़कर सांस्कृतिक और नैतिक सुधार तक फैली हुई है। उनकी लघुकथा ईदगाह (1933) निस्वार्थता और मासूमियत के सबसे मार्मिक चित्रणों में से एक है। छोटा लड़का हामिद मेले से खिलौने खरीदने के बजाय, खाना बनाते समय अपनी दादी के हाथों की रक्षा के लिए चिमटा खरीदता है। इसकी सादगी के पीछे सहानुभूति, त्याग और कर्तव्य के मूल्यों पर प्रेमचंद का गहरा संदेश छिपा है—जो एक सुधरे हुए समाज के नैतिक आधार हैं। प्रेमचंद की कहानियों का सामाजिक अध्ययन में पी. मिश्रा (2011) जैसे विद्वान इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि कैसे प्रेमचंद का नैतिक जगत वर्ग और धर्म से परे है, और पाठकों से आग्रह करते हैं कि वे तेजी से भौतिकवादी होते जा रहे विश्व में देखभाल और करुणा की नैतिकता को फिर से खोजें। प्रेमचंद का साहित्यिक संसार "साहित्य समाज का दर्पण है" में उनके गहरे विश्वास को दर्शाता है। उनकी रचनाएँ केवल कहानी कहने तक सीमित नहीं हैं, बल्कि सामंती शोषण, धार्मिक रूढ़िवादिता और वर्ग विभाजन की आलोचना करने वाले सामाजिक दस्तावेज़ों के रूप में कार्य करती हैं। उनके छोटे उद्यमी परिवर्तन के वाहक हैं—आधुनिक भारत के विरोधाभास में फँसे हुए व्यक्ति, जहाँ महत्वाकांक्षा का मिलन उत्पीड़न से होता है, और आदर्शवाद का मिलन अस्तित्व से।

4. शरत चंद्र गोस्वामी के असमिया संदर्भ में समाज और सुधार

शरत चंद्र गोस्वामी (1887-1944) असमिया लघु कथा साहित्य के विकास में एक आधारभूत स्थान रखते हैं। बीसवीं सदी के शुरुआती दशकों में लेखन करते हुए, गोस्वामी असमिया वैष्णव साहित्य की शास्त्रीय परंपराओं और आधुनिक गद्य के उभरते यथार्थवाद के बीच एक साहित्यिक सेतु के रूप में उभरे। उनका रचनात्मक काल असम के क्रमिक सांस्कृतिक जागरण के साथ मेल खाता था, जिसे औपनिवेशिक आधुनिकता और क्षेत्रीय आत्म-अभिव्यक्ति की दोहरी शक्तियों ने आकार दिया था। जहाँ शेष भारत राष्ट्रवादी आंदोलन की चपेट में था, वहीं असम ब्रिटिश भारत के विशाल ढाँचे के भीतर अपनी भाषाई, सांस्कृतिक और राजनीतिक पहचान को परिभाषित करने के लिए संघर्ष कर रहा था। जैसा कि एच. बरुआ (2002) जैसे साहित्यिक इतिहासकारों ने असमिया साहित्य के इतिहास में और आर. डेका (2017) ने असमिया लघु कथाएँ: परंपरा और प्रवृत्तियाँ में देखा है, गोस्वामी के उपन्यासों ने इस संक्रमणकालीन लोकाचार को प्रतिबिंबित किया—जिसमें प्रगति की लालसा और नैतिक जड़ता की उदासीनता, दोनों ही उस समय के असमिया समाज को परिभाषित करती थीं।

गोस्वामी का प्रारंभिक संग्रह, गल्पांजलि (1914), अक्सर असमिया लघु कथा साहित्य में एक मील का पत्थर माना जाता है। यह संग्रह ऐसे समय में प्रकाशित हुआ जब लघु कथा भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं में अभी भी एक विधा के रूप में विकसित हो रही थी, गल्पांजलि ने असमिया साहित्य में एक नया साहित्यिक यथार्थवाद लाया। इस संग्रह की कहानियों में, गोस्वामी ने स्कूली शिक्षकों, छोटे व्यापारियों, बुनकरों और छोटे किसानों के जीवन को चित्रित किया—ये वे पात्र थे जो पारंपरिक ज़िम्मेदारियों और आधुनिक महत्वाकांक्षाओं के बीच संघर्षरत एक नए असमिया मध्यम वर्ग के उदय का प्रतिनिधित्व करते थे। जैसा कि एल. बेजबरुआ (1892) और बाद में डेका (2017) ने उल्लेख किया है, गोस्वामी का यथार्थवाद टकरावपूर्ण नहीं बल्कि चिंतनशील था। उनके नायक समाज के विरुद्ध विद्रोह नहीं करते थे; बल्कि, वे उसके भीतर स्वयं का परीक्षण करते थे। उनकी दुनिया में सुधार नैतिक आत्म-चिंतन से शुरू होता है—जो औपनिवेशिक और स्वदेशी दोनों ही व्यवस्थाओं में व्याप्त पाखंड, लालच और अज्ञानता को एक शांत लेकिन शक्तिशाली चुनौती देता है। गोस्वामी की मयना (1920) उनके मानवतावादी यथार्थवाद का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। कहानी की केंद्रीय पात्र—मयना नाम की एक विनम्र ग्रामीण महिला—असमिया नारीत्व की मौन शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। उसकी दृढ़ता, सरलता और भावनात्मक गहराई पितृसत्तात्मक मूल्यों और आर्थिक कठिनाइयों से जकड़े समाज के विपरीत है। गोस्वामी उसकी पीड़ा को पीड़ित के रूप में नहीं चित्रित करते; बल्कि, वे इसे नैतिक साहस के स्रोत के रूप में चित्रित करते हैं। जैसा कि डी. नंदा (1995) ने भारतीय लघु कथा: एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण में तर्क दिया है, गोस्वामी जैसे लेखकों ने यथार्थवाद को नैतिक कोमलता से ओतप्रोत किया, ऐसे पात्रों का निर्माण किया जिनका शांत धैर्य सामाजिक प्रगति के प्रतीक बन गए। मयना के बलिदानों के माध्यम से, गोस्वामी अपने इस विश्वास को प्रकट करते हैं कि असमिया समाज में सुधार सहानुभूति, शिक्षा और महिलाओं की स्वतंत्रता के सम्मान से शुरू होना चाहिए—ये मूल्य श्रीमंत शंकरदेव और माधवदेव की सुधारवादी विरासत में गहराई से निहित हैं, जिन्होंने सामाजिक सद्भाव के साधन के रूप में समानता और भक्ति का समर्थन किया था।

बाजीकर (1930) में, गोस्वामी पारंपरिक असमिया समाज के हाशिए पर पड़े समूह, कारीगरों और कलाकारों पर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं। कहानी उन लोगों के अस्तित्वगत संघर्षों को दर्शाती है जिनकी आजीविका कौशल, रचनात्मकता और सार्वजनिक प्रशंसा पर निर्भर करती है। बाजीकर (कलाबाज़ या कलाकार) छोटे उद्यमी का रूपक बन जाता है—ऐसे समाज में कलाकारी और अस्तित्व के बीच संतुलन बनाना जो अक्सर ऐसे श्रम को हीन मानकर खारिज कर देता है। यहाँ, गोस्वामी वर्ग और गरिमा के प्रति अपनी गहरी जागरूकता प्रकट करते हैं, यह दर्शाते हुए कि सुधार व्यवस्था को उखाड़ फेंकने में नहीं, बल्कि काम को सम्मानजनक बनाने और सामाजिक जीवन में प्रत्येक व्यक्ति के योगदान को मान्यता देने में निहित है। वर्ग पूर्वाग्रह की उनकी सूक्ष्म आलोचना प्रेमचंद द्वारा पूस की रात और नमक का दरोगा में कारीगरों और छोटे कामगारों के चित्रण के समान है। दोनों लेखक, हालाँकि भूगोल और भाषा से अलग थे, करुणा और मान्यता के माध्यम से सामान्य श्रमिक वर्ग के उत्थान के लिए एक नैतिक प्रतिबद्धता साझा करते थे। एक सुधारवादी लेखक के रूप में गोस्वामी की एक विशिष्ट विशेषता असमिया सांस्कृतिक लोकाचार के साथ उनका गहरा जुड़ाव था। वैष्णव भक्ति आंदोलन, विशेषकर श्रीमंत

ISSN: 2393-8048
International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
Multidisciplinary, Multilingual, Indexed, Double Blind, Open Access, Peer-Reviewed, Refereed-International Journal.
SJIF Impact Factor =8.152, July-December 2025, Submitted in October 2025

शंकरदेव (1449-1568) की शिक्षाओं का प्रभाव उनके नैतिक ढाँचे में स्पष्ट दिखाई देता है। शंकरदेव का एक समतावादी समाज का दृष्टिकोण—जो भक्ति, करुणा और सामुदायिक सहभागिता पर आधारित था—गोस्वामी के यथार्थवाद का दार्शनिक आधार बना। परिदर्शन **(1956, मरणोपरांत प्रकाशित)** जैसी कृतियों में, गोस्वामी के नैतिक चरित्र शंकरदेव के आंतरिक पवित्रता, विनम्रता और सेवा के आदर्शों को मूर्त रूप देते हैं। एच. बरुआ (2002) के अनुसार, गोस्वामी की वैष्णव पृष्ठभूमि ने उनके गद्य को एक आध्यात्मिक आयाम दिया—उनका सुधारवाद राजनीतिक आंदोलन नहीं, बल्कि एक नैतिक जागृति थी, जो व्यक्तियों से परंपरा और प्रगति के बीच संतुलन बनाने का आग्रह करती थी।

गोस्वामी के सुधारवादी सौंदर्यशास्त्र में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका है। उनका गद्य सुबोध होते हुए भी व्यंग्य, हास्य और सहानुभूति से भरपूर है। वे सामाजिक सुधार साहित्य से जुड़े उपदेशात्मक लहजे से बचते हैं। इसके बजाय, उनकी कथात्मक शैली पाठकों को आधुनिक असमिया जीवन के अंतर्विरोधों—शिक्षा और आस्था, महत्वाकांक्षा और नैतिकता, धन और सदाचार के बीच के द्वंद्व—को महसूस करने के लिए प्रेरित करती है। जैसा कि **बेजबरुआ (1892) और डेका (2017)** ने देखा है, गोस्वामी की कहानी कहने की तकनीक नाटकीय टकराव के बजाय आत्मनिरीक्षण और सूक्ष्म भावनात्मक बदलावों पर आधारित थी। उनके पात्र अक्सर बाहरी संघर्षों के बजाय नैतिक दुविधाओं का सामना करते हैं, जो उनके इस विश्वास को दर्शाता है कि सुधार की असली लड़ाई मानव विवेक में निहित है। इसलिए, असमिया साहित्य में गोस्वामी का योगदान केवल कहानी कहने की सीमाओं से परे है। उनकी रचनाएँ एक संक्रमणकालीन समाज का दस्तावेजीकरण करती हैं—सामंती जड़ता से जागृत होकर आत्म-जागरूकता और सुधार की ओर अग्रसर। प्रेमचंद की तरह, उनका मानना था कि सामाजिक परिवर्तन केवल राजनीति या क्रांति से प्राप्त नहीं किया जा सकता; इसके लिए शिक्षा, सहानुभूति और नैतिक जीवन की आवश्यकता होती है। उनके छोटे उद्यमी, शिक्षक और कारीगर न केवल आर्थिक कारक हैं, बल्कि नैतिक नागरिक भी हैं जो असमिया समाज के धड़कते दिल का प्रतिनिधित्व करते हैं।

आर. डेका (2017) के शब्दों में, गोस्वामी की कहानियाँ "एक सांस्कृतिक ताना-बाना बुनती हैं जहाँ वैष्णव समतावाद और औपनिवेशिक मुठभेड़ से आकार लेती असमिया पहचान, आम आदमी के माध्यम से अपनी आवाज़ खोजती है।" गल्पांजलि, मयना और बाजीकर के माध्यम से, शरत चंद्र गोस्वामी ने सुधार की एक सौम्य लेकिन गहन दृष्टि प्रस्तुत की—जो नैतिक शक्ति, सामाजिक सहानुभूति और श्रम की गरिमा में निहित है। रोजमर्रा के संघर्षों का उनका मानवीय चित्रण यह सुनिश्चित करता है कि उनका काम असमिया लचीलेपन और न्याय, करुणा और आत्म-नवीकरण की शाश्वत मानवीय खोज के प्रमाण के रूप में प्रतिध्वनित होता रहे।

5. तुलनात्मक विश्लेषण: अभिसरण और विचलन

पहलू	प्रेमचंद (हिंदी साहित्यिक परिवेश)	शरत चंद्र गोस्वामी (असमिया साहित्यिक परिवेश)
सामाजिक फोकस	औपनिवेशिक उत्तर भारत के संदर्भ में लिखी गई प्रेमचंद की रचनाएँ, ग्रामीण गरीबों, किसानों, कारीगरों और कर्ज, सामंती शोषण और नौकरशाही भ्रष्टाचार में फंसे छोटे-मोटे कारिन्दों के संघर्षों को दर्शाती हैं। उनकी कहानियाँ जैसे "गोदान" और "कफ़न" गरीबी के कारण वर्गीय उत्पीड़न और नैतिक पतन की कठोर वास्तविकताओं को दर्शाती हैं। उन्होंने दर्शाया कि कैसे छोटे व्यापारी और किसान, आर्थिक विपत्ति के बावजूद, नैतिक निष्ठा और सामूहिक करुणा की भावना बनाए रखते हैं। अपने पात्रों के माध्यम से, प्रेमचंद ने आम आदमी को एक नैतिक नायक में बदल दिया, यह कहते हुए कि सच्चा सुधार केवल राजनीतिक विद्रोह में नहीं, बल्कि आत्म-साक्षात्कार और सामाजिक सहानुभूति में निहित है।	शरत चंद्र गोस्वामी ने असमिया सामाजिक परिवेश में लिखते हुए परंपरा और उभरती आधुनिकता के बीच फंसे समाज का चित्रण किया। उनका ध्यान मध्यम वर्ग, छोटे व्यापारियों और ग्रामीण असमिया समुदायों पर केंद्रित था, जो औपनिवेशिक और मिशनरी प्रभावों के बीच अपनी सांस्कृतिक पहचान को बचाए रखने के लिए संघर्ष कर रहे थे। अपने आख्यानों में, उन्होंने दैनिक जीवन की बारीकियों—श्रम की गरिमा, सामाजिक नैतिकता और असमिया मध्यम वर्ग के लचीलेपन—की पड़ताल की। छोटे उद्यमियों के उनके चित्रण में उनकी नैतिक दृढ़ता और एक ऐसे समुदाय से जुड़ाव की भावना झलकती थी जो ईमानदारी, विनम्रता और समाज सेवा को महत्व देता था।
सुधार का विषय	प्रेमचंद की सुधार की दृष्टि सामाजिक न्याय और नैतिक जागृति के प्रति उनकी प्रतिबद्धता से उपजी थी। उन्होंने आर्थिक समानता, श्रम में ईमानदारी और सभी वर्गों के प्रति करुणा पर ज़ोर दिया। उनके विचार में, सुधार सामंतवाद और मानवीय गरिमा को कुचलने वाली जातिगत बाधाओं को तोड़ने से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ था। उनका मानना था कि साहित्य उत्पीड़ितों में वर्ग चेतना और नैतिक स्वाभिमान जगाने के एक सामाजिक साधन के रूप में कार्य कर सकता है। उनके नायक अक्सर इस आंतरिक सुधार के प्रतीक थे - संघर्षशील लेकिन नैतिक रूप से ईमानदार व्यक्ति जो भारत की सामूहिक चेतना के प्रतीक थे।	गोस्वामी के सुधारवादी आदर्श मुख्यतः नैतिक और सांस्कृतिक थे, न कि प्रत्यक्ष राजनीतिक। असम की वैष्णव सुधार परंपरा से प्रभावित होकर, उनके कार्यों ने आंतरिक शुद्धि, नैतिक संयम और महिलाओं के उत्थान को एक स्वस्थ समाज की आधारशिला के रूप में स्थापित किया। उन्होंने लोगों को उनकी आध्यात्मिक विरासत और नैतिक कर्तव्यों की याद दिलाकर असमिया संस्कृति का पुनरुत्थान करने का प्रयास किया। उनका सुधारवाद सौम्य लेकिन दृढ़ था - नैतिक नवीनीकरण के मार्ग के रूप में सद्भाव, सहानुभूति और सांस्कृतिक गौरव की वकालत करते हुए।
सांस्कृतिक संदर्भ	भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान हिंदी में लिखते हुए, प्रेमचंद राष्ट्रवादी यथार्थवाद और गांधीवादी नैतिकता से गहराई से प्रभावित थे। उनकी कला ने साहित्य और सुधारवादी राजनीति के बीच सेतु का काम किया और भारत के कृषि क्षेत्र की रीढ़ की	शरत चंद्र गोस्वामी की असमिया सांस्कृतिक दुनिया 19वीं सदी के उत्तरार्ध के असमिया पुनर्जागरण से प्रभावित थी, जो श्रीमंत शंकरदेव के वैष्णव मानवतावाद से प्रेरित थी। उनकी रचनाओं में एक नैतिक मानवतावाद झलकता था जो आंतरिक शक्ति,

पहलू	प्रेमचंद (हिंदी साहित्यिक परिवेश)	शरत चंद्र गोस्वामी (असमिया साहित्यिक परिवेश)
	हड्डी की मूक पीड़ा को वाणी दी। वे साहित्य को समाज का दर्पण मानते थे—आत्म-परीक्षण को प्रेरित करने और राष्ट्र की नैतिक आत्मा को जागृत करने का एक साधन। हिंदी पट्टी के लोकाचार में निहित उनकी कहानियाँ, स्वतंत्रता-पूर्व सामाजिक चेतना के नैतिक दस्तावेज़ के रूप में खड़ी हैं।	सरलता और सांप्रदायिक सद्भाव को महत्व देता था। छोटे उद्यमियों और ग्रामीण नागरिकों को नैतिक आदर्शों के रूप में चित्रित करके, उन्होंने उस सांस्कृतिक पुनरुत्थान में योगदान दिया जिसने औपनिवेशिक एकरूपता के विरुद्ध असमिया पहचान को मज़बूत करने का प्रयास किया।
कथात्मक लहजा	प्रेमचंद की कथा शैली प्रत्यक्ष, यथार्थवादी और भावनात्मक रूप से आवेशित है, जो सहानुभूति और नैतिक चिंतन को जगाने के लिए रची गई है। उनका गद्य उपदेशात्मक होते हुए भी अत्यंत मानवीय है—सामाजिक आलोचना को भावनात्मक सत्य के साथ मिश्रित करता है। विडंबना, त्रासदी और करुणा के मिश्रण के माध्यम से, वे आम लोगों के दर्द को पकड़ते हैं और पाठकों से नैतिक उत्तरदायित्व का आग्रह करते हैं।	गोस्वामी का लहजा अधिक चिंतनशील और काव्यात्मक है। वे मानवीय कमज़ोरी, सामाजिक पाखंड और नैतिक शक्ति की पड़ताल के लिए कोमल व्यंग्य और नैतिक चिंतन का प्रयोग करते हैं। उनके लेखन में अक्सर शांत आत्मनिरीक्षण का भाव होता है, जो पाठकों को दैनिक जीवन के नैतिक प्रश्नों से जुड़ने के लिए प्रोत्साहित करता है। असमिया मुहावरों और बिंबों का उनका प्रयोग उनकी रचनाओं को एक लयबद्ध नैतिक सौंदर्य प्रदान करता है।
उद्यमशीलता का मूल भाव	प्रेमचंद के लिए, उद्यमशीलता की भावना भौतिक महत्वाकांक्षा के रूप में नहीं, बल्कि विपरीत परिस्थितियों में नैतिक सहनशीलता के रूप में उभरती है। उनके पात्र - छोटे किसान, व्यापारी और क्लर्क - अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं में जीवित रहने के संघर्ष को मूर्त रूप देते हैं। वे आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद साहस, दृढ़ता और गरिमा का प्रदर्शन करते हैं। उनके चित्रण में, प्रेमचंद ने नैतिक शक्ति को "स्व-उद्यम" के विचार से जोड़ा - समाज में सुधार के लिए स्वयं को सुधारना।	दूसरी ओर, गोस्वामी ने उद्यमशीलता को बदलते सामाजिक परिवेश में नैतिक दृढ़ता के रूप में चित्रित किया। उनके छोटे उद्यमियों ने भौतिक चुनौतियों या सामाजिक बदलावों का सामना करते हुए भी ईमानदारी और आत्म-सम्मान बनाए रखा। इनके माध्यम से, उन्होंने इस विचार पर प्रकाश डाला कि सच्ची प्रगति धन संचय में नहीं, बल्कि नैतिक मूल्यों और सामुदायिक विश्वास को बनाए रखने में निहित है।
सुधार का लक्ष्य	प्रेमचंद की सुधारवादी दृष्टि का उद्देश्य वर्ग चेतना को जागृत करना और मानवीय गरिमा को पुनर्स्थापित करना था। उनका संदेश था कि स्थायी परिवर्तन बाहरी क्रांति के बजाय जनता के नैतिक और सामाजिक जागरण से उत्पन्न होता है। वे एक ऐसे समाज की कामना करते थे जहाँ न्याय, करुणा और मानवीय मूल्य लालच और शोषण पर हावी हों।	गोस्वामी का लक्ष्य असमिया समाज में नैतिक संतुलन और सांस्कृतिक एकता को पुनर्स्थापित करना था। उनके सुधार ने परंपरा और आधुनिकता के बीच सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश की - नैतिक चेतना का नवीनीकरण जो छोटे उद्यमों और असमिया जीवन के सामाजिक ताने-बाने को बनाए रख सके। उनका ध्यान सामाजिक प्रगति की नींव के रूप में नैतिक आत्म-अनुशासन पर केंद्रित रहा।

6. समाज, संस्कृति और सुधार का अंतर्संबंध

प्रेमचंद और शरतचंद्र गोस्वामी की रचनाएँ औपनिवेशिक भारत में नैतिक और ऐतिहासिक शक्तियों के रूप में समाज, संस्कृति और सुधार के अंतर्संबंध की सबसे गहन पड़ताल प्रस्तुत करती हैं। दोनों लेखक इन तीनों आयामों को एक-दूसरे पर निर्भर मानते हैं - जिसे "परिवर्तन की त्रिकोणीय गतिशीलता" कहा जा सकता है। प्रत्येक तत्व एक-दूसरे को पोषित करता है: समाज संघर्ष का वातावरण प्रदान करता है, संस्कृति नैतिक और भावनात्मक आधार प्रदान करती है, और सुधार उस आंतरिक ऊर्जा के रूप में कार्य करता है जो दोनों को पुनर्परिभाषित करती है। इस जटिल संबंध के माध्यम से, उनकी रचनाएँ साहित्य को सामाजिक चेतना की एक जीवंत प्रयोगशाला में बदल देती हैं।

6.1 मानव संघर्ष के परिवेश के रूप में समाज

प्रेमचंद और गोस्वामी दोनों के लिए, समाज एक अमूर्त अवधारणा नहीं, बल्कि आर्थिक आवश्यकता, नैतिक संघर्ष और वर्ग असमानता से बंधे लोगों से बना एक जीवंत, साँस लेने वाला जीव है। प्रेमचंद का उत्तर भारतीय समाज, जो अडिग यथार्थवाद से चित्रित है, सामंती जमींदारों, जातिगत भेदभाव और औपनिवेशिक नौकरशाही द्वारा उत्पीड़ित दुनिया को दर्शाता है। उनके किसान और छोटे शहरों के क्लर्क जीवन की सीमाओं पर जीते हैं, लगातार नैतिक कर्तव्य और भौतिक निराशा के बीच संघर्ष करते रहते हैं। गोदान, कफ़न और पंच परमेश्वर जैसी रचनाओं में, समाज एक दर्पण बन जाता है जो उजागर करता है कि शोषण किस प्रकार मानवीय करुणा को नष्ट कर देता है। फिर भी, निराशा के बावजूद, प्रेमचंद का चित्रण निराशा का नहीं, बल्कि नैतिक संभावनाओं का चित्रण है। उनके पात्र अक्सर सहानुभूति, आत्म-सम्मान और शांत वीरता के माध्यम से निराशा से ऊपर उठते हैं। उनके लिए, समाज का उद्धार केवल क्रांति से नहीं, बल्कि उसके सबसे उपेक्षित सदस्यों में विवेक के जागरण से हो सकता है।

शरत चंद्र गोस्वामी, यद्यपि असमिया सांस्कृतिक परिदृश्य से लिखते हैं, इस मानवतावादी दृष्टि को साझा करते हैं। असमिया मध्यवर्गीय समाज का उनका चित्रण एक संक्रमणकालीन दौर को दर्शाता है—एक ऐसा समुदाय जो पारंपरिक कृषि मूल्यों और औपनिवेशिक शासन, शिक्षा और वाणिज्य के माध्यम से लाई गई आधुनिकता की ताकतों के बीच फँसा हुआ है। उनकी कहानियों में, छोटे व्यापारी, स्कूली शिक्षक और कारीगर इस परिवर्तन की नब्ज के प्रतीक हैं। अपने नैतिक दुविधाओं और मौन सहनशीलता के माध्यम से, गोस्वामी असमिया जीवन की आत्मा को प्रकट करते हैं—विनम्र, परिश्रमी और

नैतिक सामुदायिक जीवन में निहित। उनके उपन्यासों में, समाज केवल उत्पीड़न का ढाँचा नहीं है, बल्कि करुणा और आध्यात्मिक अनुशासन से बंधे रिश्तों का एक जाल है।

इस प्रकार, दोनों लेखक समाज को एक नैतिक परिदृश्य में बदल देते हैं, जहाँ दया या क्रूरता का प्रत्येक कार्य व्यापक प्रणालीगत मूल्यों का प्रतिबिंब बन जाता है। वे समाज की निंदा करने के लिए नहीं, बल्कि उसे शुद्ध करने के लिए लिखते हैं—यह दिखाने के लिए कि सुधार आम लोगों में आत्म-जागरूकता और नैतिक नवीनीकरण से शुरू होता है।

6.2 विरासत और बाधा के रूप में संस्कृति

उनकी दृष्टि में, संस्कृति पहचान की नींव और प्रगति की सीमा दोनों का काम करती है। यह वह अदृश्य धागा है जो व्यक्तियों को उनके नैतिक, आध्यात्मिक और ऐतिहासिक स्व से जोड़ता है, फिर भी यह उन्हें कठोर परंपराओं में भी बाँध सकता है। प्रेमचंद का सांस्कृतिक विश्वदृष्टिकोण गांधीवादी नैतिकता और हिंदू मानवतावाद से गहराई से प्रभावित है, लेकिन वे परंपराओं का रूमानी रूप नहीं लेते। उनके लेखन में, संस्कृति एक दोधारी तलवार है - जो करुणा और सहयोग को पोषित करने में सक्षम है, फिर भी जातिवाद और लैंगिक असमानता को बनाए रखने में समान रूप से सहयोगी है। सेवासदन और निर्मला में, वे इस बात की आलोचना करते हैं कि कैसे सांस्कृतिक मानदंड महिलाओं की वैयक्तिकता को दबा सकते हैं और नैतिकता की आड़ में पीड़ा को बनाए रख सकते हैं। वे इस बात पर ज़ोर देते हैं कि सांस्कृतिक सुधार सामाजिक सुधार के साथ होना चाहिए - कि भारत का पुनरुत्थान उसकी नैतिक परंपराओं को शुद्ध करने पर निर्भर करता है, न कि उन्हें त्यागने पर। उनके लिए, संस्कृति को करुणा, तर्क और न्याय के माध्यम से विकसित होना चाहिए। गोस्वामी, जो असम की वैष्णव परंपरा में डूबे हुए हैं, संस्कृति को एक जीवंत नैतिक शक्ति के रूप में देखते हैं जो मानव आचरण को आकार देती है। समानता और समर्पण पर ज़ोर देने वाले भक्ति आंदोलन ने उनके विचारों को गहराई से प्रभावित किया है। उनकी कहानियाँ सादगी, ईमानदारी और महिलाओं के प्रति सम्मान जैसे असमिया मूल्यों का गुणगान करती हैं, फिर भी वे यह भी मानते हैं कि रीति-रिवाजों का अंधानुकरण विकास को सीमित कर सकता है। वे अक्सर नैतिक आदर्शों और सामाजिक बंधनों के बीच फंसे व्यक्तियों के आंतरिक संघर्ष को चित्रित करते हैं। ऐसे पात्रों के माध्यम से, गोस्वामी संस्कृति के एक गतिशील दृष्टिकोण का प्रस्ताव करते हैं—एक ऐसा दृष्टिकोण जो अपने नैतिक सार को खोए बिना अनुकूलन करता है।

इस प्रकार दोनों लेखक संस्कृति को एक नैतिक सातत्य के रूप में पुनर्कल्पित करते हैं—अतीत का एक स्थिर अवशेष नहीं, बल्कि विरासत और परिवर्तन के बीच एक जीवंत संवाद। उनके हाथों में संस्कृति वह ज़मीन बन जाती है जहाँ से सुधार को पनपना चाहिए।

6.3 परिवर्तन की ऊर्जा के रूप में सुधार

प्रेमचंद और गोस्वामी की दुनिया में सुधार न तो राजनीतिक प्रचार है और न ही पाश्चात्य अनुकरण। यह एक आध्यात्मिक और नैतिक जागृति है - आंतरिक परिवर्तन का आह्वान जो समाज के सामूहिक जीवन में बाहर की ओर विकीर्ण होता है। प्रेमचंद के लिए, सुधार व्यक्ति के हृदय से शुरू होता है। उनके पात्र - गोदान में होरी, ईदगाह में हामिद, या सेवासदन में सुमन - सामाजिक नेता या क्रांतिकारी नहीं हैं; वे साधारण लोग हैं जिनके नैतिक निर्णयों के असाधारण निहितार्थ हैं। अपने दर्द, त्याग और लचीलेपन के माध्यम से, प्रेमचंद सत्य, निस्वार्थता और करुणा पर आधारित सुधार की दृष्टि को स्पष्ट करते हैं। उनका सुधारवाद व्यावहारिक होते हुए भी नैतिक है: वे हिंसक उथल-पुथल की नहीं, बल्कि अंतःकरण की शुद्धि की वकालत करते हैं। उनका यथार्थवाद एक आध्यात्मिक उद्देश्य पूरा करता है - मानवता की सोई हुई नैतिक शक्ति को जगाना। शरत चंद्र गोस्वामी की सुधार की धारणा अधिक सूक्ष्म और आत्मनिरीक्षणात्मक है। वे इसे नैतिक कायाकल्प की एक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। उनके पात्र सामाजिक समरसता के मार्ग के रूप में आत्म-अनुशासन, सेवा और सहानुभूति में विश्वास करते हैं। वे सुधार को एक पुनर्संतुलनकारी क्रिया के रूप में देखते हैं—परंपरा और प्रगति के बीच एक नैतिक संतुलन। उनके लिए, सामाजिक परिवर्तन बाहर से थोपा नहीं जा सकता; यह लोगों की सामूहिक नैतिक चेतना से प्रवाहित होना चाहिए। इस प्रकार, गोस्वामी का सुधारवादी संदेश अपने मूल में सांस्कृतिक है—भौतिक उन्नति के बीच नैतिक अखंडता के संरक्षण का आग्रह करता है।

6.4 परिवर्तन के उत्प्रेरक के रूप में मध्यम वर्ग और छोटे उद्यमी

दोनों लेखकों की रचनाओं में एक विशेष रूप से महत्वपूर्ण प्रतीक छोटे उद्यमी हैं - किसान, दुकानदार, कारीगर या क्लर्क - जो भारत की नैतिक और सामाजिक रीढ़ का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये व्यक्ति समाज के मध्य वर्ग में आते हैं: वे अमीरों द्वारा उत्पीड़ित होते हैं लेकिन समुदाय के अस्तित्व के लिए ज़िम्मेदार होते हैं।

प्रेमचंद उन्हें मूक सुधारकों के रूप में प्रस्तुत करते हैं - ऐसे पुरुष और महिलाएं जो गरीबी के बावजूद अपने नैतिक साहस को त्यागने से इनकार करते हैं। उनका धैर्य, कड़ी मेहनत और ईमानदारी अन्याय के खिलाफ एक शांत क्रांति का निर्माण करती है। वे सत्ता की मांग नहीं करते; वे सम्मान की मांग करते हैं। उनके जीवन में, प्रेमचंद सच्चे राष्ट्र-निर्माण के बीज पाते हैं - जो अधिकार के बजाय नैतिकता में निहित हैं। गोस्वामी के छोटे उद्यमी भी नैतिक लचीलेपन का प्रतीक हैं। वे औपनिवेशिक प्रभाव और स्वदेशी नैतिकता के बीच संतुलन बनाते हुए समाज में काम करते हैं। उनके लिए, ये व्यक्ति व्यापार और रिश्तों में सच्चाई और निष्पक्षता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के माध्यम से नैतिक व्यवस्था को बनाए रखते हैं। वे प्रदर्शित करते हैं कि सुधार कोई भव्य आयोजन नहीं बल्कि नैतिक जीवन जीने का एक सतत कार्य है। इनके माध्यम से, गोस्वामी इस विचार का उत्सव मनाते हैं कि सामाजिक प्रगति ईमानदारी के छोटे-छोटे कार्यों से शुरू होती है।

प्रेमचंद और गोस्वामी मिलकर मध्यम वर्ग को भारत के नैतिक परिवर्तन के केंद्र में रखते हैं। उनके उद्यमी केवल आर्थिक एजेंट ही नहीं, बल्कि नैतिक कर्ता भी हैं जो परंपरा और परिवर्तन के बीच संतुलन बनाए रखते हैं।

6.5 सुधार के नैतिक उत्प्रेरक के रूप में साहित्य

दोनों लेखक साहित्य के नैतिक मिशन में गहरी आस्था रखते थे। उनके लिए, लेखन केवल सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि नैतिक उत्तरदायित्व का कार्य था। अपनी कहानियों के माध्यम से, उन्होंने समाज की अंतरात्मा को छूने, आत्म-चिंतन को प्रेरित करने और भीतर से सुधार की प्रेरणा देने का प्रयास किया। प्रेमचंद का यथार्थवाद विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों की नैतिक उदासीनता को भेदने का एक सुविचारित साधन था। उनका साहित्य एक दर्पण और एक शिक्षक के रूप में कार्य करता था - पाठकों को गरीबों की मानवता को पहचानने के लिए प्रेरित करता था। इसी प्रकार, गोस्वामी के चिंतनशील स्वर और काव्यात्मक गद्य में एक शांत सुधारवादी भावना समाहित थी, जो बुद्धि को नहीं, बल्कि हृदय को आकर्षित करती थी। उनकी दृष्टि में, साहित्य लेखक और

पाठक के बीच एक नैतिक संवाद बन गया - एक ऐसा स्थान जहाँ समाज के दर्द को साझा किया जा सके, समझा जा सके, और अंततः सहानुभूति और कर्म में परिवर्तित किया जा सके।

7. प्रभाव और विरासत

प्रेमचंद और शरतचंद्र गोस्वामी भारतीय साहित्य के इतिहास में एक अमिट जगह रखते हैं क्योंकि उनके लेखन ने भाषाई, क्षेत्रीय और लौकिक सीमाओं को पार किया। उनकी रचनाओं ने न केवल अपने समाजों को प्रतिबिंबित किया, बल्कि सामाजिक और नैतिक जागृति के साधन के रूप में कथा साहित्य के मूल उद्देश्य को भी पुनर्परिभाषित किया। प्रेमचंद का यथार्थवाद स्वतंत्रता-उत्तर हिंदी कथा साहित्य की आधारशिला बन गया। उन्होंने रूमानी आदर्शवाद के स्थान पर सामाजिक जीवन के सत्य—गरीबी, अन्याय और नैतिक संघर्ष—को स्थापित किया। उनकी मानव-केंद्रित दृष्टि ने हिंदी लेखकों की एक पीढ़ी को प्रेरित किया, जैसे फणीश्वर नाथ रेणु, जिन्होंने अपने उपन्यास "मैला आंचल" में ग्रामीण बिहार का प्रामाणिक विवरण दिया; यशपाल, जिनके सामाजिक रूप से प्रतिबद्ध उपन्यासों ने प्रेमचंद की सुधार और प्रतिरोध की विरासत को आगे बढ़ाया; और निर्मल वर्मा, जिन्होंने यथार्थवाद को मनोवैज्ञानिक आत्मनिरीक्षण में परिष्कृत किया, फिर भी प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि के मानवतावादी सार को बरकरार रखा। इनके माध्यम से, प्रेमचंद का प्रभाव आधुनिकतावाद तक फैला, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि हिंदी कथा साहित्य सहानुभूति, नैतिकता और सामाजिक जागरूकता पर आधारित रहे। असम में, शरत चंद्र गोस्वामी के सांस्कृतिक नैतिकता और भावनात्मक गहराई पर ध्यान ने असमिया साहित्यिक पुनर्जागरण को आकार देने में मदद की। मानवता, गरिमा और नैतिक चिंतन पर उनके ज़ोर ने संवेदनशील कहानी कहने की एक परंपरा को पोषित किया, जिसे बाद में हेम बरुआ जैसे लेखकों ने आगे बढ़ाया, जिन्होंने काव्यात्मक मानवतावाद को सामाजिक-राजनीतिक आलोचना के साथ जोड़ा, और सैयद अब्दुल मलिक, जिन्होंने असमिया कथा साहित्य को उसकी सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करते हुए सार्वभौमिक मानवीय सरोकारों की ओर विस्तारित किया। गोस्वामी की नैतिक कथात्मक वाणी ने एक ऐसे साहित्य को प्रोत्साहित किया जो न केवल जीवन को चित्रित करने का प्रयास करता था, बल्कि आत्मनिरीक्षण और करुणा के माध्यम से उसे शुद्ध भी करता था। दोनों लेखकों की रचनाओं के केंद्र में, छोटे उद्यमी और कारीगर, आधुनिक भारत के संघर्षों के प्रतीक बने हुए हैं। गरीबी के बीच मानवीय गरिमा पर उनका ज़ोर भारतीय संविधान की लोकतांत्रिक भावना—न्याय, समानता और बंधुत्व—को प्रतिबिम्बित करता है। एक वैश्वीकृत भारत में, जो अभी भी असमानता से जूझ रहा है, प्रेमचंद और गोस्वामी के पात्र सामाजिक न्याय, आत्मनिर्भरता और नैतिक संतुलन की शाश्वत खोज की बात करते हैं। उनकी विरासत न केवल साहित्य में, बल्कि राष्ट्र की अंतरात्मा में भी अमर है, जो पाठकों को याद दिलाती है कि सुधार समाज के सबसे साधारण किन्तु साहसी व्यक्तियों के भीतर से शुरू होता है।

8. निष्कर्ष

प्रेमचंद और शरतचंद्र गोस्वामी, भाषा, भूगोल और क्षेत्रीय संस्कृति से अलग होने के बावजूद, साहित्य को एक नैतिक, मानवतावादी और सुधारात्मक शक्ति के रूप में देखने की एक गहन एकीकृत दृष्टि साझा करते हैं। उनके लेखन से यह स्पष्ट होता है कि कला जीवन से अलग अस्तित्व में नहीं रह सकती; उसे उन लोगों की नैतिक और भावनात्मक वास्तविकताओं से जुड़ना होगा जिनका वह प्रतिनिधित्व करती है।

स्वतंत्रता-पूर्व के छोटे उद्यमियों, किसानों और कारीगरों का उनका चित्रण आधुनिक भारतीय चेतना को आकार देने में आर्थिक अस्तित्व, सांस्कृतिक पहचान और नैतिक मूल्यों के अभिसरण को प्रकट करता है। दोनों लेखक साधारण व्यक्ति को नैतिक शक्ति के प्रतीक के रूप में उभारते हैं—ऐसा व्यक्ति जो उत्पीड़न और गरीबी के बावजूद, ईमानदारी और मानवता को कायम रखता है। उनकी कहानियाँ केवल सामाजिक टिप्पणियाँ नहीं हैं; वे न्याय और करुणा की आकांक्षा रखने वाले समाज के लिए नैतिक खाका हैं। इन दोनों लेखकों का तुलनात्मक अध्ययन एक महत्वपूर्ण सत्य को उजागर करता है: सामाजिक सुधार सांस्कृतिक आत्म-जागरूकता से अविभाज्य है। प्रेमचंद का यथार्थवाद समाज के संरचनात्मक अन्याय को उजागर करता है, सहानुभूति और सामूहिक कार्रवाई का आग्रह करता है, जबकि गोस्वामी का नैतिक आदर्शवाद व्यक्ति और समुदाय के भीतर आंतरिक शुद्धि और सद्भाव का आह्वान करता है। साथ में, वे भारतीय साहित्यिक पुनर्जागरण को एक जन आंदोलन के रूप में प्रकाशित करते हैं - न केवल राजनीतिक अधीनता से बल्कि नैतिक अज्ञानता और सामाजिक असमानता से भी मुक्ति की खोज। अंततः, उनका उपन्यास इस बात का एक स्थायी प्रमाण है कि कैसे समाज, संस्कृति और सुधार के अंतर्संबंध ने स्वतंत्रता की दहलीज पर एक राष्ट्र की नैतिक कल्पना को आकार दिया। उनकी कहानियाँ हमें याद दिलाती हैं कि साहित्य, अपने सर्वश्रेष्ठ रूप में, केवल जीवन को प्रतिबिंबित नहीं करता है - यह इसे बदल देता है। बेजुबानों को आवाज, गरीबों को सम्मान और पाठक को विवेक देकर, प्रेमचंद और गोस्वामी ने न केवल कथाएँ बनाईं, बल्कि एक नैतिक विरासत भी बनाई|

संदर्भ - ग्रंथ सूची

1. राय, अमृत. (1982). *प्रेमचंद: कलम का सिपाही*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
2. शुक्ल, रामचंद्र. (1983). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा.
3. सिंह, नामवर. (1993). *कहानी, नई कहानी और अन्य लेख*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
4. द्विवेदी, हरिशंकर. (2008). *प्रेमचंद की कहानी-कला*. लखनऊ: साहित्य भवन.
5. नंदा, दीपक. (1995). *भारतीय लघुकथा: एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण*. नई दिल्ली: साहित्य अकादेमी.
6. बरुआ, हेम. (2002). *असमिया साहित्य का इतिहास*. गुवाहाटी: असम साहित्य सभा.
7. डेका, रंजन. (2017). *असमिया लघुकथा: परंपरा और प्रवृत्तियाँ*. गुवाहाटी: असम बुक डिपो.
8. निओग, महेश्वर. (1980). *असम में वैष्णव धर्म और आंदोलन का प्रारंभिक इतिहास*. नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन.
9. बंध्योपाध्याय, शेखर. (2004). *प्लासी से विभाजन तक: आधुनिक भारत का इतिहास*. नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान.
10. चंद्र, बिपन., मुखर्जी, आदित्य., मुखर्जी, मृदुला., पनिक्कर, के. एन., एवं महाजन, सुचेता. (1989). *भारत का स्वतंत्रता संग्राम*. नई दिल्ली: पेंग्विन प्रकाशन.
11. सरकार, सुमित. (1983). *आधुनिक भारत (1885–1947)*. नई दिल्ली: मैकमिलन.
12. दास, सत्यकांत. (2005). *भारतीय साहित्य का इतिहास (1911–1956)*. नई दिल्ली: साहित्य अकादेमी.